क्या मारपीट गुजरे जमाने की बात है ?

❑ संदीप खरे

अभी हाल में मुझे शिक्षकों के साथ एक प्रशिक्षण का मौका मिला । विषय था –''बच्चों की शिक्षा एवं उनके अधिकार ।'' शिक्षा पर बात करते समय न जाने कैसे यह बात उठ गई कि अब तो शालाओं में बच्चों के साथ मारपीट व जाति भेद नहीं किया

जाता। यह बात हमारे एक शिक्षक साथी ने प्रभावशाली ढंग से कही कि शालाओं में मारपीट व जातिभेद की बात करके कुछ लोग शिक्षक समुदाय को बदनाम करना चाहते हैं। हम जैसे लोग जो शिक्षा को किताबों से दूर, जीवन के संघर्ष व संगठन को मानते हैं, उन्हें इस बात से अवश्य प्रसन्न होना चाहिये कि आज का शिक्षक अपने आप को एक समुदाय के रूप में देख रहा है तथा उसकी एकता के प्रति पूरी तरह कटिबद्ध है । राजनैतिक रूप से सतही तौर पर उसकी चेतना जागृत हो गयी है, लेकिन मेरी नजर में शिक्षक समुदाय बिना शाला और बिना बच्चों के पूर्ण नहीं होता। बच्चों को शिक्षा, प्यार और मान देने की जिम्मेदारी निश्चित रूप से शिक्षकों की है । और आप यकीन मानों, पिछले दस वर्षों से आज तक मुझे एक भी शिक्षक ऐसा नहीं मिला जो अपनी इस जिम्मेदारी से मुकरना चाहता हो, लेकिन उपभोक्तावादी संस्कृति और स्वार्थ लिप्सा के चलते वह वास्तविकता को भी स्वीकार नहीं करना चाहता । इसलिए शायद हमारे उस साथी ने शाला में मारपीट और जातिभेद किये जाने का विरोध किया । मैं इस बात को मानने के लिए तैयार हूं कि वह साथी निश्चित रूप से अपनी शाला में मारपीट व जातिभेद नहीं करते होंगे । लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उनकी शाला प्रदेश की सभी शालाओं का प्रतिनिधित्व करती है । मेरे, मेरे मित्रों व स्वयं विद्यार्थियों के अनुभव इस बात से इत्तिफाक नहीं रखते।

शहरों व गांवों की कुछ अच्छी शालाओं के शिक्षक निश्चित रूप से आज बच्चों के साथ मारपीट व जातिभेद करना पसन्द नहीं करते । इस कारण से हम सब को यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिये कि मारपीट व जातिभेद गुजरे जमाने की बात है, लेकिन प्रदेश के सैंकड़ों प्राथमिक शालाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों व बच्चों के प्रति जिम्मेदार अभिभावकों के मन में आज भी यह बात विद्यमान है कि शिक्षा प्राप्त करने का एक ही मात्र सूत्र है और वह यह है कि ''सोटा बाजे झम झम, विद्या आवे छम छम'' । शायद देखने वालों को भी यह सब बहुत स्वाभाविक सा प्रतीत होता है ।

राजमार्गों में दौड़ने वाली मोटरों में काला शीशा चढ़ाये यात्रा करने वाले जिस तरह से यह बात कहा करते हैं कि ''आज कोई भूखा नहीं है'' – उन लोगों को भी यह पता नहीं कि कितनी मांएं अपने बच्चों की रोटी के लिए शरीर बेच देती हैं, कितने बच्चे पूस की ठण्डी रातों में फुटपाथों पर इस बात का इंतजार करते हैं कि कोई रोटी फेंके और चौपाया तथा वह एक साथ उस पर झपटें । वह कल्पना भी नहीं कर सकते कि पूरा खाना (रोटी, दाल, चावल सब्जी) अभी भी बहुत सारे घरों में त्यौहारों पर बनाया जाता है। बहुत सारे लोग आज भी जानवरों की बीट से अनाज बीन कर खाते हैं। यह सब बातें ''मारपीट, भेदभाव का जमाना गुजर गया'', ऐसी बातें मानने वाले अच्छे भले शिक्षकों से कहने के संबंध में है । कुछ एक घरों में जहां सूर्य का प्रकाश पहुंच चुका है, आज बालकों का रोना नहीं अपितु खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है । मारपीट, धौंस, धींगामुस्ती नहीं अपितु प्रेम, सौहार्द और सहयोग का वातावरण दिखाई देता है, पर यह रेगिस्तान में एकाध जलस्रोत जैसा है । लाखों घरों में आज भी बच्चे दिन भर में एक से अधिक बार खाने की तरह पिटाई अवश्य खाते हैं । अक्सर मांएं भी उनके पिताओं के हाथों से पिटाई खाये बिना नहीं रहती तो बालकों की बात करना ही क्या ?

यह सत्य है कि हमारे सामने बालकों के स्वास्थ्य एवं सुखी जीवन के अपवाद मौजूद हैं जो हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत है । ऐसी प्रेरणादायी शालायें और आदर्श परिवार अभी गिने चुने हैं - यह बात जहां एक ओर हमारे लिए खुशी की बात है, वहीं दुःख का कारण भी । जहां पर लाखों बच्चे खाने के बिना कुपोषण का शिकार हो जाते हैं वहां पर अगर कुछ घरों में बच्चे सुखी भी हैं तो यह बात समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित प्रजातंत्र के लिए बहुत दुखदायी है । इसी प्रकार जहां लाखों बच्चे कदम-कदम पर मारपीट व गाली-गलौज के शिकार हों तो उनके माता-पिता व शिक्षक चैन की बंसी कैसे बजा सकते हैं ? दुनिया भर के लाखों बच्चे उन्हीं के तो हैं । इनके प्रति लापरवाह रहकर अपने बच्चों के लिए स्थायी सुख कैसे ढूंढ सकते हैं ? कष्ट व अपमान सहते हजारों बच्चों के बीच कुछ बच्चों का सुखी रहना दुखी रहने से भी कहीं अधिक भयंकर है । अतः दुःख का जला सुख की नन्हीं नन्हीं किरणों को भी निगल जाएगा। जरूरत इस बात की है कि बच्चों के अधिकारों के लिए कार्य करने वालों का दायरा और व्यापक हो।

अभी तक मारपीट व छुआछूत का युग पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है । हमारे बच्चे अभी इसी युग में सांस ले रहे हैं । छुआछूत, भेदभाव, मारपीट व अपमान का संक्रामक रोग अभी नष्ट नहीं हुआ है । हमारे निरोगी बच्चे इन्हीं संक्रामक रोगों के बीच जिन्दा हैं । अभी गरीबी का दामन सिमटा नहीं है और दो-चार संपन्न बच्चे लाखो भूखे नंगे बच्चों के बीच जिन्दा है ।

हमें उन लाखों-लाख अबोधों के लिए सोचना है, जो अभी वंचित है । अभिभावकों के होते हुए भी शाला से दूर हैं और उनकी अमृतमयी छाया से वंचित हो जाते हैं । हमें उन सभी बच्चों को बचाना है । उन्हें संरक्षण देना है जिनके कि वे हकदार हैं ।

आजादी की लड़ाई में जिस प्रकार सभी देश की रक्षा के लिए आगे आये थे और एक निर्णायक लड़ाई लड़ी थी । इसी तरह शायद नयी सदी की सुबह हम सब से यह मांग करती है कि इस युग में तिरस्कृत, भयभीत, अपमानित, घुटन में जी रहे बच्चों की रक्षा हेतु मानसिक रूप से तैयार होकर एक निर्णायक लड़ाई लड़नी है, जो कि शायद किसी विदेशी से नहीं अपने आप से लड़नी होगी जिसमें युद्ध क्षेत्र शायद कहीं और नहीं हमारा अपना घर होगा । ◆